अध्याय इक्कीसवाँ

॥श्री गणेशाय नमः॥ श्री सरस्वत्यै नमः॥ श्री सिद्धारूढ़ाय नमः॥

"हृदय मंदिर में स्थित हे सतगुरुनाथजी, आप लोगों को शाश्वत तथा अशाश्वत वस्तुओं का बोध करते हैं, सभी के अंत:करण में मोक्ष का बोध निर्माण करने वाला ज्ञान उत्पन्न करते हैं। वैराग्य प्राप्त हुए लोग जब आप के चरणों में शरणागत होते हैं, तब आप उनके जन्म जन्म के मित्र बनकर, उनको धन्य करते हुए आखिर उनका उद्धार करते हैं।"

वेद तथा शास्त्रों के बयान करने की क्षमता से परे जो आप का रूप है, उसे ब्रह्म कहते है; जो पाप रहित तथा पाप और पुण्य के परे होते हुए सर्वगत है। काल्पनिक क्रियाकलापों का बयान करने वाले शब्द तथा केवल वाणी से व्यक्त की हुई बातों के सर्वथा परे होने वाला वह निर्विकार चैतन्य है। जबतक शुद्ध ब्रह्म का योग्य ज्ञान नहीं होता, तब तक चारो ओर माया का फैलाव होने वाला यह जगत ही एक सत्य है, ऐसा लगता है तथा ज्ञान प्राप्ति के पश्चात व्दैत का निराकरण होकर मोक्षप्राप्ति होती है। ऐसी इस ब्रह्मज्ञान की अगाध महिमा है, जिससे कर्म कुछ भी शेष नहीं रहता (बचता) और ब्रह्मप्राप्ति होती है। परंतु जो अज्ञानी जीवात्मा है, उसे गुरुकृपा के बिना यह ज्ञान कैसे प्राप्त होगा? ब्रह्मज्ञान प्राप्ति से निराकार स्वरूप (आत्मा) के साथ जीवात्मा एकरूप होता है, व्दैत का निराकरण होकर मोक्ष प्राप्त होता है। देहबुद्धि के कारण मन हमेशा नाम तथा रूप धारक वस्तुओं में ही तल्लीन रहता है और निर्गुण निराकर ब्रह्म तक पहुँच ने से भयभीत होता है। फिर भी कठिन उपासना करके सतगुरुजी का रूप तथा गुणों का चिंतन करने से व्दैत भाव का विनाश होता है। सतगुरुजी जिस अव्दैतभाव का ही रूप है, जीवात्मा सतगुरुजी के चिंतन से स्वयं उसी स्थिति को प्राप्त होता है। उसके पश्चात सोहंभाव (मैं स्वयं ही ब्रह्म हूँ यह स्थिति) प्रकट होता है, जिस भाव से हमें नाम तथा रूप होने वाली हर वस्तु को समझना चाहिए। इस प्रकार अगर प्रतिदिन उपासना करें, तो चारो ओर चैतन्य का आभास होता रहता है। उसी सोहंभाव से अगर हम अपने शरीर को समझे तो स्वरूपज्ञान होता है। उसके बाद हम स्वयं को अपने शरीर से विलग समझने

लगते हैं, स्थूल और सूक्ष्म (आत्मा, ब्रह्म) इन दोनों को जान लेते हैं, घटने वाली हर घटना का साक्षी होने वाले शुद्ध चैतन्य से एकरूप हो जाते है और सही अर्थ में अपने घर लौटते (यानी मोक्षप्राप्त करते हैं) हैं। ऐसी स्थिति प्राप्त होने के पश्चात, ऐसा प्रतीत होता है की मैं हमेशा ऐसी ही स्थिति में था तथा मैं कभी भी दुर्गुणों (विकार) का शिकार नहीं हुआ था। अगर जगत में स्थित दृश्य का फैलाव देखने चले, तो वह कही भी दिखाई नहीं पड़ता (यानी की चारो ओर शुद्ध ब्रह्म ही है, यह समझने का ज्ञान प्राप्त होता है)। यह जगत का फैलाव (दृश्य का फैलाव) दिखाई नहीं पड़ता, इतना ही नहीं, यह जगत कभी बना ही न था और जैसे अंबर में गाँव का बसना असंभव है उसी प्रकार जगत का बनना भी असंभव है, यह प्रतीति मन में दृढ़ होती है। एक बार चित्त आत्मस्थिति में लीन होने के पश्चात, जहाँ नजर पड़े वहाँ स्वरूप (आत्मा) के सिवाय अन्य कुछ भी नजर नहीं आता। जिस प्रकार हम अपने शरीर को निर्विकार वृत्ति से देखते है, उसी प्रकार इस जगत को देखने लगते हैं, पत्नी, बच्चों के साथ बर्ताव तथा घरगृहस्थी आदि सभी व्यवहार आत्मरूप से करने लगते हैं। तत्पश्चात मन को शुद्ध ब्रह्मस्वरूप पर केंद्रिभूत करने से जीवात्मा तुर्या (जागृति यानी जगना, सुषुप्ति यानी निद्रा और स्वप्नावस्था, इन तीनों स्थितियों से परे होने वाली चौथी स्थिति को तुर्या कहते है, जिस स्थिति में जीवात्मा ब्रह्म से एकरूप हुआ रहता है) स्थिति के भी परे पहुँचता है, जिस अवस्था में जीवात्मा केवल ज्ञानरूप में होता है तथा अहंकार पूर्ण रूप से नष्ट हुआ रहता है। इस स्थिति का अनुभव होना, इसी को ज्ञान प्राप्ति होना ऐसा सभी शास्त्र कहते हैं तथा ऐसा अनुभव होते ही हृदय में अपूर्व आनंद जागृत होता है। उस आनंद का अनुभव करने के लिए सतगुरुजी की शरण में जाना आवश्यक होता है और वे अगर दया करें तो ही हम ब्रह्मरूप को प्राप्त कर पाते हैं। श्रोतागण, अब आदर के साथ सतगुरुजी की कहानी सुनिए, जिस पर चिंतन करने से आसानी से स्वरूप (आत्मा) का अनुभव होगा।

पुण्यभूमि हुबली शहर में रमानाथ नाम का एक ब्राह्मण सज्जन उसकी पत्नी कृष्णाबाई तथा पुत्र के साथ रहता था। जब उसके पुत्र के जनेऊ (उपनयन संस्कार) के कार्यक्रम की तैयारी हो रही थी, उसकी पत्नी ने उसे कहा, "अजी!

सुनिए। अपने पुत्र के जनेऊ के समय श्रीसिद्धारूढ़जी को यहाँ आमंत्रित कीजिए। सबसे प्रथम उनकी पूजा करने के पश्चात, उपनयन संस्कार कराईए। क्योंकि, इस पुत्र के जन्म से पूर्व जन्मे हुए हमारे दोनो पुत्रों की मृत्यु होने के पश्चात मुझे मेरे बच्चे कैसे जीवित रहेंगे यही चिंता सता रही थी। उस समय किसी ने मुझे कहा की, श्रीसिद्धनाथजी से प्रार्थना करने से बच्चे अवश्य जीवित रहेंगे, ऐसी उनकी ख्याति है। इसलिए, जब मैं फिर से गर्भवती हुई तब सिद्धाश्रम जाकर मैं ने सिद्धारूढ़जी से पुत्रप्राप्ति तथा पुत्र को जीवित रखने की प्रार्थना की। दयालु सतगुरुनाथजी ने आशिर्वाद देने के पश्चात उन्हें प्रणाम करके मैं हर्ष से घर लौटी। इसीलिए मैं कहती हूँ की जनेऊ की विधि आरंभ करने से पूर्व सतगुरुजी को आदरसमेत घर बुलाकर उनकी विशेष पूजा करके उन्हें आनंदित करने की मेरी मनोकामना आप पूरी कीजिए। केवल उनकी कृपा से ही अपना पुत्र जीवित रहा है, इसीलिए उसके जनेऊ के समय सिद्धनाथजी की षोडशोपचार पूजा करके उन्हे सादर सुवर्णमुद्राएँ तथा वस्त्रादि की भेंट चढ़ाकर, भोजन अर्पण करने के पश्चात ही सिद्धाश्रम भेजिए। इस प्रकार सतगुरुजी की पूजा करने से इस पुत्र का पूर्णत: भला ही होगा, यह सोचकर जैसा मैंने कहा है वैसा ही कीजिए।" पत्नी की बात सुनकर रमानाथ क्रोधित होकर बोला, "तुम्हें मनौती उतारने के लिए अन्य कोई भगवान याद नहीं आया? हम ब्राह्मण हैं यह जानते हुए भी तुमने एक शूद्र के नाम से क्यों मनौती उतारी? अगर उन्हें पूजा के लिए अपने घर आमंत्रित किया तो सभी ब्राह्मण मुझ पर हँसेंगे, इसलिए तुम्हारी यह मूर्खता तुम छोड़ दो। हम अपने घर में स्थित भगवान की मूर्तियों की पूजा करेंगे।" कृष्णाबाई ने अति आग्रहपूर्वक बिनती करने के बाद भी उसने उसे मना कर दिया। उसपर एकांत में जाकर कृष्णाबाई दुख से रो पड़ी; सतगुरुजी की प्रार्थना करते समय उसके नयनों से अविरत आँसू बह रहे थे। दयनीय होकर उसने कहा, "हे सतगुरु सिद्धनाथजी, मेरी प्रार्थना सुनकर तुरंत आईए। मेरा पति मुझे मेरी मनौती उतारने नहीं दे रहा है, इसलिए आप स्वयं तुरंत आईए और मनौती उतारने में मेरी मदद कीजिए। मुझ पर क्रोध न करें और मेरे पुत्र को बचाईए।" उसी क्षण उसे अपने हृद्य में सतगुरुमूर्ति का स्मरण हुआ; उन्होंने उसे आश्वासित करने के कारण वह फूले न समाई। उसपर घर में जनेऊ की

विधि आरंभ हुई| जनेऊ की विधि से पूर्व अपने पूजाघर की भगवान की मूर्तियों की पूजा करने हेतु जब रमानाथ पूजाघर गया, तब वहाँ एक चमत्कार हुआ। लकड़ी के सिंहासन पर जहाँ श्रीकृष्ण भगवान की मूर्ति रखी थी, वहाँ उसे श्रीसिद्धारूढ़जी की मूर्ति दिखाई देने लगी। इस आश्चर्य को देखकर वह भ्रमित हो गया। उसने सोचा की कही ऐसा तो नहीं की अपनी मनोकामना पूरी करने के लिए कृष्णाबाई ने ही श्रीकृष्ण भगवान की मूर्ति निकालकर उस जगह श्रीसिद्धारूढ़जी की मूर्ति रखी हो? उसने कृष्णाबाई को जोर से आवाज दी। उसके आते ही वह बोला, "तुमने कृष्ण भगवान की मूर्ति निकालकर सिद्धारूढ़जी की मूर्ति क्यों स्थापित की?" जो उचित था वही उसने कहा, "यह कैसे हुआ ये मैं भी नहीं जानती|" परंतु आश्चर्य से दंग होकर वह मन ही मन बोली दयालु सिद्धारूढ़जी आप ही की यह लीला हैं! उसके पश्चात रमानाथ ने शालिग्राम (गंडकी नदी के किनारे मिलने वाला एक प्रकार का गोल बलुआ पत्थर, जिसे कृष्ण भगवान का ही रूप समझकर उसकी प्रतिदिन पूजा की जाती है) रखा हुआ सिंघोरा खोलकर देखा, तो उसमें भी उसे सिद्धारूढ़जी की मूर्ति दिखाई पड़ी। गणेशजी, विठ्ठलजी (श्रीविष्णु का अवतार, जिसकी महाराष्ट्र तथा कर्नाटक राज्य में भक्ति की जाती है) तथा शालिग्राम इन सारी मूर्तियों की जगह सिद्धारूढ़जी की मूर्तियाँ देखकर वह मन ही मन दंग रह गया। उसने मन में कहा की ईश्वर की लीला अगाध है तथा सिद्धारूढ़जी निश्चित ही एक अवतारी व्यक्ति है इसमें कोई संदेह ही नहीं। तब उसने पत्नी से कहा, "सच में मैंने बिना किसी कारण तुम पर क्रोध किया। तुम समझ गयी थी की सिद्धारूढ़जी एक अवतारी व्यक्ति है, सचमुच ही तुम धन्य हो। मैं अभी सिद्धाश्रम जाकर सतगुरुजी को लेकर आता हूँ और उनकी षोडशोपचार पूजा करके तुम्हारी मनोकामना पूरी करता हूँ।" ऐसा कहते हुए उसने तुरंत सभी रिश्तेदार तथा मित्रों को घर बुलाकर भगवान की सभी मूर्तियाँ सिद्धारूढ़जी की मूर्तियों में परिवर्तित होने का आश्चर्य दिखाया। उसने उन से कहा, "देख लीजिए! सतगुरुजी की यह अगाध लीला है! भगवान की सभी मूर्तियाँ उन के रूप में परिवर्तित हो गयी हैं। हम जैसे लोगों ने उनकी महिमा जाने बिना कर्ममार्ग अपना लिया। अब उस गुरुनाथजी की चरणों में शरण जाकर, प्रेम और आदर से उनकी पूजा करके इस मृत्युलोक में धन्य हो

जाऊँगा।" ऐसा कहकर रमानाथ तुरंत सिद्धाश्रम पहुँचा और सिद्धनाथजी से प्रार्थना करके उन्हें घर ले आया। सतगुरुजी के लिए दिव्य आसन की व्यवस्था करके कृष्णाबाई उनकी प्रतिक्षा कर ही रही थी। सतगुरुजी को दर्शन करते ही प्रेम से वह गद्‌गद्‌ हो गयी। सिद्धनाथजी को आसन पर बिठाकर कृष्णाबाई ने उनके चरणों में मस्तक रखा, उसी क्षण भावनाओं के आवेग से बहने वाले उसके नयनों के आँसुओं से सतगुरुजी के चरण धुल गये। उसने कहा, "हे दीनदयालु सिद्धारूढ़जी, हमारे जैसे अनाथों की रक्षा कीजिए। हम आप की महिमा क्या समझ पाएँगे? परंतु फिर भी आप ने हम पर कृपा की|" उसपर रमानाथ पूजा का सामान ले आया और उसने भी उनके चरण छू लिये। उसके पश्चात उसने विधिनुसार सिद्धारूढ़जी की पूजा की। सभी मित्र तथा रिश्तेदारों के साथ मिलकर उन्हें नैवेद्य अर्पण किया। पूजा समाप्त होने के पश्चात उनकी आरती उतारी। उसपर उसने सिद्धनाथजी को दक्षिणा तथा एक दिव्य दुशाला अर्पण किये और गाडी में बिठाकर उन्हें फिर से सिद्धाश्रम छोड़ आया। श्रीसिद्धारूढ़जी की जीवनी की यह कथा यहीं समाप्त हो गयी।

अब इस कहानी के लक्ष्यार्थ की ओर ध्यान दीजिए। रमानाथ को कर्मकांडी (धार्मिक कर्मकांड करके अपने आप को धन्य समझने वाले लोग) जीवात्मा तथा उसकी पत्नी कृष्णाबाई को सद्‌बुद्धि समझिए। ज्ञानस्फूर्ति के रूप में जन्म लिये हुए उसके दोनों बच्चे पूर्वजन्म के कर्म तथा गुरुकृपा का अभाव, इन कारणों से मृत्यु को प्राप्त हो गये। परंतु जब वह सतगुरुजी की शरण में गयी, उसे तीसरा बोध रूपी पुत्र प्राप्त हुआ। केवल सतगुरुनाथजी की कृपा से ही बोध रूपी पुत्र बच पाया यह जानकर उसने जीवात्मा से सतगुरुजी को समझ लेने की प्रार्थना की। उसकी प्रार्थना सुनकर कर्मकांड के मार्ग का खिंचाव होने वाला जीवात्मा क्रोधित हो गया। उसपर उसने कहा की सतगुरुजी और वे दोनो, भिन्न जाति के होने के अलावा सतगुरुजी ने निवृत्ति का मार्ग अपनाने के कारण उन्हें आमंत्रित करने से वे दोनों धर्मभ्रष्ट हो जाएंगे। जब हृदयांतर्गत बुद्धि लुप्त हो गयी और अंतर्ध्यान के कारण मन की प्रवृत्तियाँ तदाकार हुयी तब उसे हृदयमंदिर में गुरुमूर्ति दिखाई देने लगी। उसपर मन की प्रवृत्तियाँ गुरुचरणों में स्थिर हो गयी। कभी कभी क्रोध तथा व्देष से हम व्यवहार करते हैं और उसके पश्चात

अपने ही व्यवहार का चिंतन करते हैं, तब अपनी प्रवृत्ति अंतर्ध्यान होकर प्रेम की निर्मिती होती है। उसी प्रकार गुरुचरणों पर प्रेम निर्माण होने के पश्चात जीवात्मा ने उन्हें समझ लिया, प्रेम से उनकी पूजा की तब उसे अति हर्ष हुआ। बोध मन में स्थिर हुआ। जीवात्मा ने चित्त शुद्ध होने के पश्चात सतगुरुजी को भक्ति रूपी दक्षिणा तथा प्रेम रूपी दुशाला अर्पण की। इस प्रकार सतगुरुजी की पूजा करने के कारण बोध हृदय में स्थिर हो गया, जिससे ज्ञान प्राप्ति होकर अपनेआप ही व्दैतभाव का निराकरण हो गया। ऐसे सतगुरुजी का चिंतन अथवा जीवनी को श्रवण करने से मन तदाकार होता है और चारो ओर उन्हीका रूप दिखाई देने लगता है। श्रोतागण, अब अगले अध्याय में बयान की हुई मधुर कथा आदर के साथ सुनिए, जिससे त्रिभुवन में आनंद समाएगा। अस्तु। जिसका श्रवण करने से सभी पाप भस्म हो जाते हैं, ऐसे इस श्री सिद्धारूढ़ कथामृत का मधुर सा यह इक्कीसवाँ अध्याय श्री शिवदास श्री सिद्धारूढ़ स्वामीजी के चरणों में अर्पण करते हैं। सबका कल्याण हो।

॥ श्री गुरुसिद्धारूढ़चरणारविंदार्पणमस्तु ॥